International Journal of Leading Research Publication (IJLRP)

E-ISSN: 2582-8010 ● Website: www.ijlrp.com ● Email: editor@ijlrp.com

आनंद कुमारस्वामी: लोक परंपरा और उसका वि-औपनिवेशीकरण

Shubhendu

Ph.D. Research Scholar
Department of Historical Studies and Archaeology
Central University of South Bihar, Gaya, India.

राजा राव ने अपने कालजयी उपन्यास 'द सरपेंट एंड द रोप' में लिखा है, "यह बोस्टन ब्राह्मण, आनंद कुमारस्वामी, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के किसी भी लड़खड़ाते हुए पुराने अध्यक्ष की तुलना में कहीं अधिक स्मार्ट, एक सच्चे और रूढ़िवादी भारतीय थे। भारत का निर्माण हमारे राजनेताओं और राजनीति विज्ञान के प्रोफेसरों द्वारा नहीं, बल्कि भारत के इन एकाकी अस्तित्वों द्वारा किया जाएगा, जिनमें भारत का स्मरण, अनुभव और संचार किया जाता है; इतिहास से परे, परंपरा के रूप में, सत्य के रूप में; यह बहुत कम मायने रखता है। लेकिन कुमारस्वामी के इस भारत को भला कौन छीन पाएगा? न तैमूर और न ही जोसेफ स्टालिन।" [2, 1] यह उद्धरण कुमारस्वामी की उस विराट बौद्धिक सत्ता को रेखांकित करता है जिसने बीसवीं शताब्दी में भारतीय तत्वमीमांसा और कला इतिहास की दिशा बदल दी। [1] आनंद केंटिश मुथु कुमारस्वामी का जन्म 22 अगस्त 1877 को कोलंबो, ब्रिटिश सीलोन में एक प्रतिष्ठित संकर परिवेश में हुआ था। [1, 2, 3] उनके पिता सर मुथु कुमारस्वामी एक तमिल विधायक और दार्शनिक थे, जो पोंनमबलम-कुमारस्वामी परिवार के स्तंभ थे, जबकि उनकी माता एलिजाबेथ बीबी एक अंग्रेज महिला थीं। [1, 3] पितृ-छाया से मात्र दो वर्ष की आयु में वंचित होने के कारण उनका पालन-पोषण और प्रारंभिक शिक्षा इंग्लैंड में हुई, जहाँ उन्होंने ग्लौसेस्टरशायर के स्ट्राउड स्थित वायक्लिफ कॉलेज में अध्ययन किया। [1, 2] उनकी प्रारंभिक शैक्षणिक प्रतिभा विज्ञान की ओर उन्मुख थी, जिसके परिणामस्वरूप उन्होंने यूनिवर्सिटी कॉलेज लंदन (UCL) से भूविज्ञान और वनस्पति विज्ञान में स्नातक की उपाधि प्राप्त की। [1] 1902 से 1906 के मध्य सीलोन के खनिज विज्ञान पर उनके गहन शोध ने उन्हें 'डॉक्टर ऑफ साइंस' (D.Sc.) की उपाधि से विभूषित किया और 'जियोलॉजिकल सर्वे ऑफ सीलोन' की स्थापना का मार्ग प्रशस्त किया, जिसके वे प्रथम निदेशक नियुक्त हुए। [1, 2]

कुमारस्वामी के जीवन में एक युगांतकारी बौद्धिक संक्रान्ति तब परिलक्षित हुई जब उन्होंने खनिजों के वर्गीकरण जैसे जड़ भौतिकवादी कार्यों को त्यागकर पूर्व के आध्यात्मिक और कलात्मक मूल्यों के प्रलेखन का गुरुतर दायित्व संभाला। [1] सीलोन में अपनी यात्राओं के दौरान उन्होंने देखा कि औपनिवेशिक प्रभाव में वहां की पारंपरिक कलाएं और शिल्प मरणासन्न अवस्था में थे, जिसने उनकी औपनिवेशिक विरोधी चेतना को प्रज्वलित किया। [1, 2] उन्होंने अनुभव किया कि भारत की वास्तविक संप्रभुता केवल राजनीतिक स्वतंत्रता में नहीं, बल्कि उसकी सांस्कृतिक अस्मिता की पुनर्प्राप्ति में निहित है। [3] 1906 तक उन्होंने यह संकल्प लिया कि वे पश्चिम को भारतीय कला के माध्यम से शिक्षित करेंगे, क्योंकि उनके अनुसार भारतीय कला केवल सौंदर्यशास्त्र का विषय नहीं बल्कि तत्वमीमांसा का दृश्य रूप थी। [1] उन्होंने पुरातत्वविदों के शुष्क दृष्टिकोण की आलोचना करते हुए तर्क दिया कि कला का मूल्यांकन केवल कलाकारों द्वारा ही किया जाना चाहिए, क्योंकि वही उसकी प्रतीकात्मक सार्थकता को समझने के पात्र हैं। [1] इस प्रकार, एक कठोर वैज्ञानिक अन्वेषक का रूपांतरण एक महान तत्वमीमांसी और 'सोफिया पेरेन्निस' (Sophia Perennis) के व्याख्याता के रूप में हुआ, जिसने पूर्व और पश्चिम के मध्य एक ऐसे सेतु का निर्माण किया जो आज भी अडिग है (Coomaraswamy 1)। [1, 2, 3]

कुमारस्वामी ने 'लोक' (Folk) और 'देशी' परंपराओं की जो तत्वमीमांसीय व्याख्या प्रस्तुत की, वह आधुनिक समाज की सतही और नृवंशविज्ञानी व्याख्याओं से पूर्णतः भिन्न थी। [1] उनके चिंतन में लोक परंपराएं केवल अनपढ़ों का मनोरंजन नहीं थीं, बल्कि

वे उन प्राचीन सत्य मूल्यों का संचयन थीं जो नवपाषाण काल (Neolithic times) से निरंतर चले आ रहे हैं। [1] वे प्रतिपादित करते हैं कि लोक परंपराओं ने उन पुराने मूल्यों को संरक्षित किया है जो आज भी "तत्वमीमांसीय रूप से बोधगम्य" (metaphysically intelligible) हैं। [1] उन्होंने 'मार्ग' (शास्त्रीय या संहिताबद्ध) और 'देशी' (लोक) परंपराओं के मध्य एक तुलनात्मक पद्धति का अवलंबन किया और यह स्पष्ट किया कि लोक संस्कृति राष्ट्रीय और नस्लीय सीमाओं से परे एक "सांस्कृतिक अखंडता" का प्रतिनिधित्व करती है। [1] उनके अनुसार, लोक विश्वास और किंवदंतियाँ केवल काल्पनिक कथाएँ नहीं हैं, बल्कि वे एक ऐसे ज्ञान तंत्र का हिस्सा हैं जिसे लिखित दस्तावेज़ों के अभाव में मौखिक परंपरा और व्यावहारिक शिल्प के माध्यम से पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित किया गया है (Coomaraswamy 80)। [1, 3]

इस तत्वमीमांसा के केंद्र में यह विचार था कि लोक प्रतीक "अनादि काल" से चले आ रहे हैं और उनकी सूक्ष्मता यह सिद्ध करती है कि वे कभी गहन रूप से समझे गए सत्य का अंग थे। [1] कुमारस्वामी ने उदाहरण दिया कि लोककथाओं में प्रचलित 'जैक्स बीनस्टॉक' (Jack's Bean-stalk) का प्रतीक वास्तव में जैकब की सीढ़ी (Jacob's ladder) के ही समान तत्वमीमांसीय विचार को अभिव्यक्त करता है, जो पृथ्वी और आकाश के मध्य के संबंध को दर्शाता है। [1] उन्होंने रेने गुएनोन के विचारों का समर्थन करते हुए तर्क दिया कि जब कोई नया धर्म या संप्रदाय पुरानी परंपराओं को विस्थापित करता है, तो वह अक्सर उन्हें 'लोक' के रूप में उपेक्षित कर देता है, किंतु उनके अंतर्निहित प्रतीक और अर्थ अपरिवर्तित रहते हैं। [1] लोक परंपराओं का यह "सुसंगत निकाय" आधुनिक धर्मनिरपेक्ष मस्तिष्क द्वारा खोए गए उस शाश्वत ज्ञान का अवशेष है जिसे कुमारस्वामी ने 'पेरेनियलिज्म' (Perennialism) की संज्ञा दी। [1, 3] उनका मानना था कि इन प्रतीकों का अर्थ खो जाना आधुनिक मनुष्य की बौद्धिक दरिद्रता का परिचायक है, जबकि पारंपरिक समाज में अनपढ़ व्यक्ति भी इन गूढ़ सत्यों का ज्ञाता होता था। [1, 3]

वि-औपनिवेशीकरण के क्षेत्र में कुमारस्वामी का योगदान केवल राजनीतिक नारों तक सीमित नहीं था, बल्कि उन्होंने कला के माध्यम से भारतीय आत्मा की मुक्ति का मार्ग प्रशस्त किया। [3] उन्होंने पश्चिमी शैक्षणिक यथार्थवाद (academic realism) की अत्यंत प्रखर आलोचना की, जिसे वे भारतीय दिव्य रूपों के "मानवीकरण" और "भावुकता" (sentimentalization) के रूप में देखते थे। [1] उनके अनुसार, जब कोई कलाकार दैवीय प्रतीकों को केवल शारीरिक रचना विज्ञान या मानवीय भावनाओं के प्रदर्शन तक सीमित कर देता है, तो वह उस कला कृति के आध्यात्मिक सार की हत्या कर देता है। [1] औपनिवेशिक प्रभाव के कारण भारतीय चित्रकला में जो यथार्थवाद आया, उसने देवताओं को केवल उन मनुष्यों के रूप में प्रस्तुत किया जिन्हें पश्चिमी मानकों पर 'अनुमोदित' किया जा सके, जिससे प्रतीकवाद का गंभीर पतन हुआ। [1, 3] कुमारस्वामी ने 'आर्ट एंड स्वदेशी' (Art and Swadeshi) आंदोलन के माध्यम से यह संदेश दिया कि भारत की शक्ति उसके स्वयं के सौंदर्यशास्त्रीय मानकों पर लौटने में है। [1, 3]

पश्चिमी आधुनिकता बनाम पारंपरिक भारतीय सौंदर्यशास्त्र के प्रति उनके विचार निम्नलिखित बिंदुओं में समाहित किए जा सकते हैं:

- **कला का बौद्धिक स्वरूप:** कला कोई यांत्रिक अनुकरण नहीं बल्कि एक "बौद्धिक कार्य" (intellectual act) है, जहाँ कलाकार के मन में स्थित 'रूप' का विचार ही वास्तविक कला है। [1, 2]
- **यथार्थवाद का विरोध:** प्रकृति की नकल करना कला नहीं है; सच्ची कला दिव्य सत्यों का "सादृश्य" (correspondence) है। [1, 2]
- **कलाकार की गुमनामी:** पारंपरिक समाज में कलाकार अपनी व्यक्तिगत पहचान को गौण रखता था, क्योंकि उसका कार्य अहंकार का प्रदर्शन नहीं बल्कि सत्य का प्रतिबिंब था। [2]
- **औद्योगिक पतन:** औद्योगिक क्रांति को उन्होंने "पतन" (dégringolade) के रूप में देखा, जिसने कला को मात्र सजावट और कलाकार को एक वेतनभोगी मजदूर बना दिया। [1, 2]

कुमारस्वामी ने स्पष्ट रूप से कहा कि वि-औपनिवेशीकरण तब तक संभव नहीं है जब तक भारतीय अपने स्वयं के मानकों से कला का मूल्यांकन करना नहीं सीखते (Coomaraswamy 19)। [1, 3]

शिक्षा के क्षेत्र में कुमारस्वामी ने "मैकॉलेवाद" (Macaulayism) को भारतीय संस्कृति के विरुद्ध "एक घातक प्रहार" के रूप में परिभाषित किया। [3] उन्होंने क्षोभ व्यक्त किया कि ब्रिटिश शिक्षा प्रणाली ने भारतीयों को "अपने ही देश में अजनबी" बना दिया है, जहाँ विश्वविद्यालय के स्नातक शेक्सपियर के छंदों को तो रटते थे, किंतु अपनी मातृभाषा, महाकाव्यों और संगीत के प्रति पूर्णतः उदासीन थे। [3] उनके अनुसार, आधुनिक शिक्षा प्रणाली ने भारतीयों की अपनी परंपराओं को समझने की क्षमता को कुंठित कर दिया है, जिससे वे पश्चिमी संस्कृति के "बुरे अनुकरणकर्ता" बनकर रह गए हैं। [3] उन्होंने तर्क दिया कि शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य सूचनाओं का संचय नहीं बल्कि "चरित्र निर्माण" होना चाहिए, जो केवल अपनी सांस्कृतिक जड़ों से जुड़कर ही संभव है। [3]

कुमारस्वामी ने 'साक्षरता का हौवा' (The Bugbear of Literacy) नामक अपने प्रसिद्ध निबंध में यह क्रांतिकारी विचार प्रस्तुत किया कि साक्षरता का अनिवार्य रूप से संस्कृति से कोई संबंध नहीं है। [1, 3] उन्होंने सीलोन के उन ग्रामीणों का उदाहरण दिया जो निरक्षर होने के उपरांत भी 'जातक' कथाओं और 'महाभारत' के दर्शन को आत्मसात किए हुए थे, और उनकी वाणी में वह गरिमा और गंभीरता थी जो आधुनिक शिक्षित युवाओं में पूर्णतः लुप्त है। [1, 3] अरस्तू का संदर्भ देते हुए उन्होंने प्रश्न उठाया कि क्या साक्षरता वास्तव में मनुष्य को अधिक संस्कृत बनाती है, या यह केवल एक तकनीकी कौशल है जिसे हम ज्ञान समझ बैठे हैं? [1] वे आधुनिक शिक्षा की "धर्मनिरपेक्षता" के भी घोर आलोचक थे, क्योंकि यह "हर वस्तु की पवित्रता" (sacredness of all things) के उस भारतीय सिद्धांत को नकारती है जहाँ विज्ञान, कला और जीवन को धर्म से अलग नहीं किया जा सकता था। [3] कुमारस्वामी का मानना था कि पश्चिमी ज्ञान केवल एक 'स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम' होना चाहिए, जबकि प्राथमिक शिक्षा पूर्णतः भारतीय आदर्शों और स्थानीय परिवेश पर आधारित होनी चाहिए। [3]

पारंपरिक समाज में शिल्पकार का स्थान केवल एक कारीगर का नहीं बल्कि आध्यात्मिक मूल्यों के वाहक का था। [2] कुमारस्वामी के अनुसार, "शिल्पकला विचार करने का एक तरीका है" (craftsmanship is a mode of thought), जहाँ वस्तु का निर्माण और उसका अर्थ अविभाज्य हैं। [2] उन्होंने पारंपरिक 'संरक्षक-शिल्पकार' (patron-craftsman) संबंध को रेखांकित किया, जो उस व्यक्तिगत और पवित्र जुड़ाव पर आधारित था जिसे औद्योगिक क्रांति ने समूल नष्ट कर दिया। [2] उनके अनुसार, एक ग्रामीण कारीगर की उपलब्धि किसी शहरी हस्तशिल्पी से कम नहीं है; वह कौशल की कमी से नहीं बल्कि उस संरक्षण की कमी से पीड़ित है जो उसे समाज में गौरव प्रदान करता था। [2] पाषाण युग से औद्योगिक युग तक के सफर को उन्होंने एक महान गिरावट (dégringolade) के रूप में देखा, जहाँ मशीनीकरण ने कार्य की आध्यात्मिक सार्थकता को छीनकर उसे केवल भौतिक उत्पादन तक सीमित कर दिया। [1]

कुमारस्वामी ने अंग्रेजी तकनीकी विद्यालयों की "निर्वयक्तिक प्रकृति" की तुलना में पारंपरिक भारतीय "पितृसत्तात्मक शिल्प वातावरण" को श्रेष्ठ माना, क्योंकि वहां शिक्षा समस्याओं को सुलझाने का एक जीवित अभ्यास थी। [2] उन्होंने नर्तक और अभिनेता की कला को "योग" के समान बताया, जहाँ कलाकार "आत्म-विस्मृति" (self-forgetfulness) के माध्यम से दैवीय अवस्था को प्राप्त करता है (Sarma 22)। [2] उन्होंने गोपाल कृष्णय्या दुग्गीराला के साथ मिलकर 'अभिनय दर्पण' का अनुवाद किया, जो इस बात का प्रमाण है कि वे नृत्य और नाट्य को भी तत्वमीमांसा के अनिवार्य अंग के रूप में देखते थे। [2] पारंपरिक समाज में कला "अम्यूजमेंट" (मनोरंजन) का साधन नहीं थी, बल्कि वह जीवन के चार पुरुषार्थों-धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष-की प्राप्ति का एक माध्यम थी। [3] उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि भारतीय कलाकार 'व्यक्तित्व' (personality) नहीं बल्कि एक 'व्यक्ति' (person) था, जिसका समस्त कौशल उसकी व्यक्तिगत सनक के बजाय शास्त्र सम्मत नियमों से निर्देशित होता था। [2]

प्रतीकवाद के अध्ययन में कुमारस्वामी का 'नटराज' (Lord of the Dance) का विश्लेषण आज भी विश्व के विद्वानों के लिए एक संदर्भ बिंदु है। [1, 2] उन्होंने 'सादृश्य' (Sadrsya) को दृश्य अनुकृति के बजाय दैवीय विचारों के "अनुरूप प्रतिनिधित्व" (analogical representation) के रूप में परिभाषित किया। [1] नटराज की प्रतिमा केवल एक सुंदर मूर्ति नहीं है, बल्कि वह संपूर्ण ब्रह्मांडीय प्रक्रिया का एक दृश्य चित्रण है। [2] कुमारस्वामी ने नटराज के नृत्य को 'पंचक्रिया' के रूप में वर्णित किया, जिन्हें उन्होंने विशिष्ट देव-स्वरूपों से जोड़ा:

- **सृष्टि (Srishti):** सृजन, जिसका अधिपति ब्रह्मा है। [2, 8]
- **स्थिति (Sthiti):** संरक्षण और पालन, जिसका अधिपति विष्णु है। [2, 8]
- **संहार (Samhara):** विनाश और पुनर्चक्रण, जिसका अधिपति रुद्र है। [2, 8]
- **तिरोभाव (Tirobhava):** आवरण और माया, जिसका अधिपति महेश्वर है। [2, 8]
- **अनुग्रह (Anugraha):** कृपा और मुक्ति, जिसका अधिपति सदाशिव है। [2, 8]

नटराज के हाथों में स्थित डमरू उस 'नाद' (ध्वनि) का प्रतीक है जो सृष्टि का प्रथम तत्व है। [2, 13] उनके दूसरे हाथ में स्थित अग्नि विनाश का प्रतीक है, जो अज्ञानता और अहंकार के दहन को दर्शाती है। [2, 8] अभय मुद्रा वाला हाथ भक्त को सुरक्षा का आश्वासन देता है, जबकि उनका उठा हुआ पैर 'मोक्ष' का द्वार है। [2] नटराज का पैर 'मुयलक' (Muyalaka) नामक दानव को कुचल रहा है, जो अज्ञानता का मूर्त रूप है। [2] कुमारस्वामी ने स्पष्ट किया कि शिव का यह नृत्य केवल चिदंबरम के मंदिर में नहीं, बल्कि उपासक के हृदय (चिदंबरम = चेतना का आकाश) के भीतर घटित होता है। [2, 23] उनके लिए नटराज की प्रतिमा भारतीय प्रज्ञा (intellect) की सर्वोच्च अभिव्यक्ति थी, जो विज्ञान, धर्म और कला का एक अपूर्व संश्लेषण प्रस्तुत करती है। [2] उन्होंने यह भी तर्क दिया कि जब तक कोई व्यक्ति इस प्रतीकवाद के आध्यात्मिक सार को नहीं समझता, वह भारतीय कला की व्याख्या करने का अधिकारी नहीं है। [2]

निष्कर्षतः, आनंद कुमारस्वामी के संपूर्ण कृतित्व का मूलाधार यह है कि भारत के सम्मुख सबसे बड़ी चुनौती उसकी आध्यात्मिक अखंडता (spiritual integrity) का ह्रास है। [3] वि-औपनिवेशीकरण का वास्तविक अर्थ केवल विदेशी शासकों का प्रस्थान नहीं, बल्कि उन पारंपरिक तत्वमीमांसीय मानकों की पुनर्स्थापना है जिन्होंने इस सभ्यता को हज़ारों वर्षों तक जीवित रखा। [1, 3] उन्होंने चेतावनी दी थी कि साक्षरता और आधुनिकता के नाम पर हम अपनी जड़ों को काट रहे हैं, जिससे एक "बौद्धिक चांडाल" (intellectual pariah) वर्ग उत्पन्न हो रहा है जो न पूर्व का है और न पश्चिम का। [3] उनके अनुसार, राष्ट्रीय संस्कृति ही वह एकमात्र स्थान है जहाँ से कोई व्यक्ति वास्तव में 'विश्व का नागरिक' बन सकता है, क्योंकि जो अपनी जड़ों का सम्मान नहीं करता, वह दूसरों के सत्य का सम्मान कभी नहीं कर सकता। [3]

कुमारस्वामी ने वेदांत और प्लेटोवाद के मध्य जो एकता सिद्ध की, वह सिद्ध करती है कि सत्य वैश्विक है, किंतु उसके प्रति पहुंचने का मार्ग स्थानीय और पारंपरिक होना चाहिए। [1] उनका जीवन एक सतत साधना थी-खनिजों के पत्थरों से लेकर नटराज की कांस्य प्रतिमाओं तक, उन्होंने हर वस्तु में छिपे उस 'सूत' (Sutratman) को खोजा जो समस्त सृष्टि को एक सूत्र में पिरोता है। [1] वे मानते थे कि जब तक भारत अपनी भाषा, अपने संगीत और अपनी पवित्रता की भावना पर पुनः गर्व करना नहीं सीखता, तब तक उसकी स्वतंत्रता अधूरी है। [3] उनकी विरासत हमें स्मरण कराती है कि कला केवल देखने के लिए नहीं, बल्कि तत्वमीमांसा को जीने के लिए है। [2] उनके शब्द आज भी प्रासंगिक हैं: "भारत का भविष्य उन लोगों के हाथों में नहीं है जो केवल भौतिक उत्पादन में प्रतिस्पर्धा करना चाहते हैं, बल्कि उन लोगों के हाथों में है जो भारत को पुनः विश्व का शिक्षक बनाने का सामर्थ्य रखते हैं।" [3]

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. Coomaraswamy, Ananda K. *Christian and Oriental Philosophy of Art*. Dover Publications, 1956.
2. Coomaraswamy, Ananda K. *Essays in National Idealism*. Colombo Apothecaries, 1910.
3. Coomaraswamy, Ananda K. *History of Indian and Indonesian Art*. Kessinger Publishing, 2003.
4. Coomaraswamy, Ananda K. *Hinduism and Buddhism*. Golden Elixir Press, 2011.
5. Coomaraswamy, Ananda K. *Mediaeval Sinhalese Art*. Pantheon Books, 1908.
6. Coomaraswamy, Ananda K. *Rajput Painting*. B.R. Publishing Corp., 2003.
7. Coomaraswamy, Ananda K. *The Bugbear of Literacy*. Sophia Perennis, 1979.

8. Coomaraswamy, Ananda K. *The Dance of Shiva – Fourteen Indian Essays*. Kessinger Publishing, 2003.
9. Coomaraswamy, Ananda K. *The Indian Craftsman*. Probsthain, 1909.
10. Coomaraswamy, Ananda K. *What is Civilisation?: and Other Essays*. Golgonooza Press, 1989.
11. Gopal, Pingali. "Ananda K. Coomaraswamy on Education in India." *Pragyata*, 2023.
12. Sarma, M. Nagabhushana. "Ananda Coomaraswamy: Contribution to Indian Dance Criticism." *Nartanam*, Vol. X, No. 3, 2010.
13. Wikipedia contributors. "Ananda Coomaraswamy." *Wikipedia, The Free Encyclopedia*, 2026.